International Journal of Applied Research 2018; 4(8): 252-254

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2018; 4(8): 252-254
www.allresearchjournal.com
Received: 20-06-2018
Accepted: 23-07-2018

डॉ. संध्या गौतम
एसोसिएट प्रोफेसर, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला छावनी, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
डॉ. संध्या गौतम
एसोसिएट प्रोफेसर, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला छावनी, हरियाणा, भारत

संत–साहित्य दर्शन

डॉ. संध्या गौतम

प्रस्तावना

भारतीय मूल चेतना उपनिषदों से ग्रहण करके और मध्यकालीन साधना के अनेक प्रभाव लेकर संतों के मुख से जिस वाणी का उद्घोष हुआ, वहीं संत काव्य के नाम से हिन्दी साहित्य में जानी जाती है। यह वाणी अपने प्रतिपाद्य के अनुसार ही देश–काल की सीमाओं से मुक्त ऐसी वेगवती अजस्र धारा के रूप में मुखरित हुई, अपितु अनेक सहृदयों को रससिक्त एवं जागृत करने में भी सक्षम हुई। हिन्दी में इसकी एक समृद्ध परम्परा परिलक्षित होती है। हिन्दी संत–काव्य का भवन प्रत्येक प्रांत की मिट्टी से निर्मित है। अनेक ऐसे संत कवियों का साहित्य अब प्रकाश में आया है, जिन्होंने भारत के पृथक–पृथक प्रांतों में बैठ कर अपनी मातृभाषा का त्यागकर हिन्दी में ही काव्य–सृजन किया। संतों में हिन्दी के प्रति यह आग्रह क्यों आया? इसका कारण यही रहा होगा कि वे हिन्दी के माध्यम से अपना संदेश अधिक से अधिक जनता तक प्रेषित कर सकते थे। संत कवि निगमानन्द परमहंस, जो पंजाबी क्षेत्र में उत्पन्न हुए, उन्होंने कारण स्पष्ट ही कर दिया है–

''भाषा वाहन मात्र है, मुख्य तत्व है भाव।
देश देश के अनुभवी, कहते बिना दुराव।
कहते बिना दुराव, भाव से मानस मोती।
स्नेहिल वृति सुप्त, भाव से जागृत होती।
कहे निगम कविराय, जनों में भर कर आशा।
प्रांत–प्रांत को जोड़ सके, इक हिन्दी भाषा।

इससे सिद्ध होता है कि अन्य भाषा–भाषी संतों ने अपनी वाणी का माध्यम हिन्दी को सप्रयोजन चुना था। जिसके मूल में उनके समस्त काव्य का केन्द्रीय भाव लोक संग्रह, सर्वात्मवाद, आत्मज्ञान आदि ही परिलक्षित होता है।

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार 'सन्त' शब्द का प्रयोग साधारणतः किसी भी पवित्रात्मा और सदाचारी पुरुष के लिए किया जाता है और कभी–कभी यह 'साधु' एवं 'महात्मा' शब्दों का पर्याय भी समझ लिया जाता है, किन्तु 'संत' शब्द आ जाने पर इसका एक पारिभाषिक अर्थ भी हो सकता है, जिसके अनुसार यह उस व्यक्ति का बोध कराता है। जिसने सत रूपी परमतत्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से उपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो। अतएव विशिष्ट लक्षणों के अनुसार 'सन्त' शब्द का व्यवहार केवल उन आदर्श महापुरुषों के लिए किया जा सकता है, जो पूर्णतः आत्मनिष्ठ होने के अतिरिक्त समाज में रहते हुए, निस्वार्थभाव से विश्वकल्याण में प्रवृत्त रहा करते हैं। 'सन्त' शब्द का अर्थ मेरी दृष्टि में स+अंत से है। 'स' से मरो अभिप्राय समाज, सकारात्मकता, समन्वय, समझ, सहानुभूति, सहजता, सुरति, संतसंगति, सत्य, सदाचार, सर्वात्मवाद, स्वतंत्र, स्वबन्धन, स्वानुभूति से हैं। जिस व्यक्ति में इनका अंत नहीं है, जिसमें ये अपार हैं, वही संत है। जितना मैंने कबीर, नानक, दादू, गरीबदास आदि के साहित्य में पढ़ा और जाना तो पाया इनके मानववादी, सकारात्मक दृष्टिकोण ने समग्र समाज को एक करने का प्रयास किया, जो इनकी समन्वयवादी दृष्टि का परिचायक है। 'सुकरात ने एक बार कहा था जब परमेश्वर को धरती के जीवों से वार्तालाप करना होता है, तो वह कवियों की वाणी के माध्यम से बोलता है। वह अपना दिव्य संदेश कवि के दिव्य शब्दों में देता है। सुकरात का यह कथन विश्व के कुछ ही कवियों पर लागू होता है। इन कुछ कवियों में कबीर का स्थान सबसे ऊँचा है।

संत–काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है निर्गुण भक्ति और निर्गुण भक्ति का महत्त्वपूर्ण तत्व है मानव को एक ऐसे विश्वव्यापी धर्म के सूत्रों में निबद्ध करना जहाँ जाति, वर्ग और वर्ण–सम्बन्धी भेद न हो। उनकी साधना का यह द्वार सबके लिए उन्मुक्त था। इस क्षेत्र में हिन्दू–मुसलमान का भेद भी विलुप्त हो गया और भक्ति के क्षेत्र में सब समान प्रमाणित हुए।

कबीर ने तो कहा है – 'हरि को भजे सो हरि को होय।' संतों की यह भक्ति प्रणाली आनन्द और शान्ति से संयुक्त शुद्ध अन्तःकरण की वह स्वाभाविक प्रणाली है। उनकी सहज साधना का यह मार्ग सर्वथा अभिनव और क्रान्तिकारी था।

वास्तव में संत सम्प्रदाय विश्व सम्प्रदाय है। उसका धर्म विश्वधर्म है। इस विश्वधर्म का मूल आधार है– हृदय की पवित्रता, क्योंकि समस्त वासनाओं, इच्छाओं और द्वेषों से रहित हृदय ही विश्व धर्म में प्रवेश कर सकता है। निष्कपट, निर्द्वन्द्व, निर्भीक एवं परोपकारी व्यक्तित्व के धनी संत अखा को भी गुजरात का कबीर कहा जाता है। उनके समस्त विचारों का मूलाधार सर्वात्मवादी दृष्टि है, जिसके कारण उनका काव्य सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। संतों का काव्य मनुष्य को सदाचार एवं शुद्धाचरण की शिक्षा देता है। कबीर ने तो समझाया है कि ऐसी वाणी बोलिए चाहिए, जिससे तनिक भी अहंकार की भावना न हो। अहंकार विहीन वाणी ही स्व और सर्व के लिए आनन्द का कारण हो सकती है। इसके साथ ही संतों ने सत्संगति पर बल दिया है, क्योंकि सत्संगति से मनुष्य अच्छा और नेक बनता है तथा कुसंगति से पापी, दुराचारी एवं दुष्ट बनता है। कबीर ने तो यह कहा है

'मूरखि संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराई।
कदली साँप भुजंग मुख, एक बूँद तिहुँ भाइ।

मानव जीवन में आचरण के लिए प्राथमिक शर्त है स्वतन्त्र विवेकपूर्ण मानवीय संकल्प। पानी का बहना, पहिए का घूमना और घड़ी का बन्द हो जाना उनका आचरण नहीं है, किन्तु मनुष्य का कड़वी बात बोलना, आक्रमण करना, सहायता देना आदि उसका आचरण है, क्योंकि पहिए का घूमना उसके विवेकपूर्ण निर्णय और स्वतंत्र संकल्प का परिणाम नहीं है। मनुष्य का व्यवहार उसके विवेकपूर्ण संकल्प का परिणाम होता है। अतः वह आचरण है, जिसके लिए वह उत्तरदायी है। संतों ने अपने विवेकपूर्ण आचरण द्वारा, अपनी समन्वयवादी दृष्टि द्वारा समस्त मानव जाति को एक करने का प्रयास किया और उसमें सफल भी हुए। उनका काव्य बाह्य शुद्धि के साथ–साथ आन्तरिक शुद्धि पर भी बल देता है।

संतों ने विषयासक्ति से उत्पन्न होने वाले मनोविकारों काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि को समस्त प्रपंचों की जड़ माना है। हमारे यहाँ सहजयानियों ने भी कहा था और आज के मनोवैज्ञानिक भी कहते हैं कि विषयों का त्याग अस्वाभाविक है, सहजता वास्तव में भोग में ही है, किन्तु संत ऐसा नहीं मानते। उनका यह सामान्य अनुभव है कि तृष्णा कभी तृप्त नहीं होती, इसे जितना सींचो उतनी ही बढ़ती है। कबीर कहते हैं–

'त्रिष्णा सींची न बुझै/दिन–दिन बढ़ती जाय।

उनका अनुभव था कि सामान्य जीवन से लेकर चैतन्य पुंज मनुष्य और तेज पुंज देवता तक इसके हाथों ध्वस्त होते रहे हैं। इसीलिए संत कामोद्दीपन के नहीं काम–दमन के समर्थक हैं। वे मानते हैं कि जिसने इस काम को जीत लिया है, वही ज्ञानी और सिद्ध है। यह काम विजय ही सहजता देने वाली हैं –

'सहजै सहजै सब गए, सुत बित कामिनी काम।
एकमैक होइ मिलि रहा, दास कबीरा राम।
'सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिहि सहजै बिखया तजै, सहज कहावै सोई।

इन संतों ने अपनी इस उदात्त वृत्ति से लोक कल्याण की कामना की है।

संतों ने वह प्रेम अभीष्ट नहीं, जो काम को प्रधान लक्ष्य मानता हो। कबीर कहते हैं –

'भगति बिगाड़ी कांमिया, इंद्री करै स्वादि।
हीरा खोया हाथ तै, जनम गवायां बादि।

संतों ने प्रेम और काम के सह–अस्तित्व को परस्पर विरुद्ध माना है। जिस तरह सूर्य के प्रकाश के सामने रात्रि की स्थिति असम्भव है, ज्ञान के प्रकाश में अज्ञान का रहना असम्भव है, उसी तरह जहाँ काम प्रबल है, वहाँ प्रेम की स्थिति असम्भव है। कामासक्त मनुष्य कँचुली में लिपटे नाग की तरह अंधा होकर अपना सिर स्वयं तोड़ लेता है। संतों ने अपनी भक्ति को ही प्रेम कहा है। मध्यकालीन संतों की वाणी का मुख्य लक्ष्य है मानव की प्रतिष्ठा, उसके आन्तरिक सद्भाव और सात्विक वृति में आस्था तथा मानव–मानव में एकता की स्थापना। संत दादू ने प्रेम का निरूपण करते हुए कहा है

'दादू हरि रस पीवतां, कबहुँ अरुचि न होई।
पीवत प्यास नित नया, पीवण हारा सोई।।

प्रभु के प्रेम का प्यासा इस पावन रस के एक–एक घूँट को पीकर नित्य नई प्यास अनुभव करता है। कबीर ने भी कहा है कि प्रेम तो खांड़े की धार है, जिस पर कोई बिरला ही चल सकता है। व्यभिचारी व्यक्ति तो इस पर चल कर छिन्न–भिन्न हो जाता है। जिसे 'श्रीमद्भगवद्गीता' में अनासक्त योग कहा गया है, वही सहज साधना के साधक संतों का कर्म होता है। कबीर ने उस सहज साधना का परिचय देते हुए कहा है 'साधो सहज समाधि भली।

गुरु प्रताप जा दिन ते उपजी, दिन दिन अधिक चली।

संतों का काव्य नश्वर संसार के प्रति 'मनुष्य को चेताता है, वही कण–कण में है साई रमता की बात कर उसे कर्म करने की प्रेरणा देता है। नानक ने कहा है कि कर्म करो और बाँट कर खाओ। उनकी मान्यता है कि सेवा भाव और कर्मण्यता के अपनाने से ही समाज से निकम्मेपन और आलस्य को दूर किया जा सकता है। जन–जन में परिवर्तन से ही बाह्य परिवर्तन सम्भव है। विश्व शान्ति और एकता को आध्यात्मिक मार्ग पर चल कर ही प्राप्त किया जा सकता है।

संतों का साहित्य अद्भुत समन्वयकारी साहित्य है। दार्शनिक क्षेत्र में संत–साधकों ने भारतीय अद्वैतवाद, बौद्धों के शून्यवाद तथा इस्लाम के एकेश्वरवाद, तीनों का समन्वय अपने 'निर्गुण' के अन्तर्गत कर लिया है। धर्म के क्षेत्र में इन साधकों ने प्रबल विरोधी हिन्दू और इस्लाम धर्म को एक ही स्थान पर ला बैठाया। राम–रहीम को अभेद बताते हुए अपनी सहज–सरल उक्तियों द्वारा इन धर्मो के अनुयायियों की आँखें खोलने की चेष्टा की। उस समय में प्रचलित वैष्णव, शैव, शाक्त सम्प्रदायों की अच्छी बातें तो संतों ने मानी और बुरी बातों की कठोर निदा की। सामाजिक क्षेत्र में भी वर्ण–जाति आदि व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए मानवीय स्तर पर एक करने का प्रयास किया। दादू कहते हैं

''कबीर बिचारा कहि गया, बहुत भांति समुझाई।
दादू दुनिया बावरी, ताके संगि न जाइ।।

कबीर ने लोक दर्शन और तत्व चिन्तन के बल पर समाज हित के लिए जो गरिमापूर्ण विचार प्रकट किए हैं, उन्हें दादू ने प्रकारान्तर में प्रतिपादित किया। उन्होंने भी चित–संस्कार पर बल दिया। संत रविदास ने भी इस समन्वय पर बल देते हुए कहा है –

'वेद कुरान कोई न अन्तर करन एक ही संदेसा।
जाति, धर्म व वर्ण विसेस का कोई न भेद विसेसा।।

दुर्लभ मानव–जीवन का परम लक्ष्य उस परम तत्व में तल्लीनता है।

सामाजिक विघटन के उस युग में जहां दानवता अपना नग्न नृत्य दिखा रही थी, धर्म खून का प्यासा था, मनुष्य अपनी वास्तविकता भूल गया था, संत कवियों ने अपनी वाणी द्वारा मनुष्य के जीवन को सच्ची राह दिखाई। यह उनका एक अत्यन्त क्रान्तिकारी कदम था। जो संतों जैसे निर्लिप्त एवं साहसी व्यक्तियों के द्वारा ही उठाया जा सकता था। संतों ने बिना किसी भौतिक बाधा की चिंता किए इस ओर प्रयास किया और उन्हें बहुत कुछ सफलता मिली। संतों ने इस संसार में अनुभव किया कि विषय–तृष्णा में लिप्त लोगों का जीवन दुःखों से भरा है, उन्हें यहाँ जो मिला दुःखी मिला। यह दुःख ऐसा था, जिसने संतों की नींद छीन ली। संतों ने बार–बार इस दुःख को अपना साथी कहा हैं। वस्तुतः यह दुःख ही संवेदनशील व्यक्ति को वर्तमान के प्रति सजग बनाता है, उसके विवेक को जागृत करता है। परम्परागत मृत मूल्यों, विचारों, रूढ़ियों और लोकशास्त्र की निरर्थक जकड़बंदियों से सीना तान कर टकरा जाने की प्रेरणा देता है। वर्तमान जीवन की यह संवदेनशीलता ही उन्हें बौद्धिक समाधान देने के लिए सत्य की खोज में अनन्त पथ का राही बना देती है। 'हंसि–हंसि पीव न पाइए, जिन पाया तिन रोई' के दर्शन का यही रहस्य है। कबीर कहते हैं –

'लालन की ओबरी नही, हंसन की नहिं पाति।
सिंहन के लेहडा नहीं, साधु न चले जमाति।।

इन संतों का यह अकेलापन इस दुःख की राह की नियति है, आत्मदायित्व इसका सम्बल है और जागृत विवेक उनका साथी है। अपनी राह, अपने उत्तरदायित्व और अपने साथी को संत अच्छी तरह समझते हैं, इसीलिए वे घबराने की जगह उत्साहित और आनन्दित होते हैं। जिस मरने से दुनिया डरती है, वही उनके लिए आनन्द का विषय सिद्ध होता है –

'जिस मरने तैं जग डरै, सो मेरे आनन्द।
सब कब मारिहौ कब भेटेहौं, पूरन परमानन्द।।

संत जानते हैं कि विवेक के जागृत होने पर ही सत्य की संगति होती है और इस विवेक का आधार है आत्मानुभव। इस आत्मानुभव को ही संतों ने सर्वाधिक महत्व दिया है, क्योंकि यह अनुभव ही व्यक्ति को निर्भय बनाता है। अनुभव से युक्त विवेक और विवेक से युक्त अनुभव ने संतों के काव्य साहित्य को एक अलौकिक आभा से युक्त कर दिया है, जो शताब्दियों के बाद भी प्रत्येक के आनन्द का कारण है। इसी कारण संत साहित्य सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्वभौमिक है, जो सदैव सत्यं, शिवं, सुन्दरं की त्रिवेणी में स्नान करता है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आदि कवि वाल्मीकि के शोक की तरह संतों का शोक भी अपनी सहज–स्वाभाविक गति से काव्य बन गया है। संत काव्य में हर पद पर शोक के श्लोकत्व का साक्षात्कार होता है। कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने शोक के इसी श्लोकत्व को ध्यान में रख कर कहा होगा कि अगर विश्वशान्ति के लिए विधिमार्ग का संधान करना हो तो संतों का साहित्य पर्याप्त सिद्ध हो सकता है, क्योंकि वह ही विश्वबंधुत्व की भावना को अपने में समाहित किए है।

संदर्भः

1. अन्तर–विद्यावर्ती शोध', पृ. 222
2. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, पृ. 854
3. साहित्यिक निबंध, पृ. 643
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 139
5. कबीर और अखा, पृष्ठ 398
6. हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, पृ. 115
7. मानव मूल्य श्रेष्ठ काव्यों का मूल्यांकन, पृ. 68
8. हिन्दी साहित्य : अतीत के झरोखे से, पृ. 53
9. संभावना शक्ति काव्य विशेषांक, पृ. 51, 52
10. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास, पृ. 166
11. भक्तिकालीन कवियों के काव्य सिद्धान्त, पृ. 48
12. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, पृ. 158
13. हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास, पृ. 166
14. साहित्यानुशीलन, पृ. 226
15. डॉ. जगन्नाथ शर्मा, 'हिन्दी संतकाव्य में अद्यतन शोध' लेख डॉ. शशिभूषण सिंहल (सं.), अन्तर – विद्यावर्ती शोध, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, 1983
16. धीरेन्द्र वर्मा (सं.), 'हिन्दी साहित्य कोश', भाग–1, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1985
17. डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, 'साहित्यिक निबन्ध', लोकभारती प्रकाशन, 15–ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद, 1984
18. डॉ. नगेन्द्र (सं.) 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, 23, दरियागंज, नयी दिल्ली, 1980
19. डॉ. रामनाथ घूरेलाल शर्मा, 'कबीर और अखा की विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1983
20. डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, 'हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1977
21. धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1990
22. डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त (सं.), साहित्यानुशीलन, हिन्दी विभाग, रोहतक विश्वविद्यालय, रोहतक, 1977
23. डॉ. यश गुलाटी, हिन्दी के श्रेष्ठ काव्यों का मूल्यांकन, सूर्य भारतीय प्रकाशन, नई सडक, दिल्ली, 1969
24. डॉ. इन्द्रपाल सिंह, 'अतीत के झरोखे से हिन्दी साहित्य', वागीश्वरी प्रकाशन, आगरा, 1990
25. डॉ. भीमसिंह मलिक (सं.), 'संभावना भक्तिकाव्य विशेषांक', हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, मई 1990,
26. डॉ. शिवमूर्ति शर्मा, ''हिन्दी साहित्य का प्रवृत्यात्मक इतिहास' किताब महल, इलाहाबाद, 1982
27. डॉ. सुरेशचन्द गुप्त, भक्तिकालीन कवियों के काव्य सिद्धान्त, आर्य बुक डिपो, 30 नाईवाला, करौल बाग, नयी दिल्ली, 1971
28. डॉ. शिवकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, अशोक प्रकाशन, 2615, नई सड़क, दिल्ली, 2001